RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

# प्राचीन भारत में मृण्मूर्तियों में प्रतिबिम्बित देवत्व एवं धर्म का एक अध्ययन

अवधेश कुमार चौधरी
प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित् विश्वविद्यालय, कोटवॉ, जमुनीपुर–दुबावल, इलाहाबाद

**ARTICLE DETAILS**

**Article History**
*Published Online:* 20January 2019

**Keywords**
प्राचीन भारतीय कला, धर्म, प्राचीन भारत

**ABSTRACT**

प्राचीन भारतीय कला के अन्तर्गत मनुष्य की इच्छाओं तथा कल्पनाओं का मूर्त रूप ही नहीं उसकी धार्मिक तथा आध्यात्मिक मान्यताएँ भी सम्मिलित हैं। कलाकार की कला पर प्रकृति, आन्तरिक आवेग, सामाजिक परम्पराओं तथा सांस्कृतिक विरासत का प्रभाव पड़ता है। भारतीय कला में यहाँ की धर्मप्रधान सामाजिक व्यवस्था पूर्णतया प्रतिबिम्बित है। धर्म तथा कला मानव जीवन के प्रबल अंग रहे हैं तथा वे एक दूसरे के पूरक हैं।

प्रस्तावना

मनुष्य विश्व का केन्द्र बिन्दु है उसकी लक्ष्यसिद्धि के लिए और कल्याण साधन के लिए धर्म उदित होता है। भारतीय धर्म उदार होने के कारण मानव-जीवन की पारलौकिक भावनाओं के ही साथ धर्म का क्षेत्र सीमित नहीं करता प्रत्युत उसका सम्बन्ध इहलोक से भी जोड़ता है। धर्म वह साधन है जो प्राणियों के ऐहिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयस को सिद्ध करता है। मानव हृदय की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ मानी गई हैं- कर्म, ज्ञान तथा भक्ति। मनुष्य संसार में रहकर चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। वैदिकधर्म में इसकी प्राप्ति के निमित्त त्रिविध पक्ष (क्रियापक्ष-कर्म, बुद्धिपक्ष-ज्ञान तथा हृदयपक्ष-भक्ति) का विधान किया गया है। भक्ति के द्वारा भक्त भगवान के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर मोक्ष की प्राप्ति करता है। सुगमता तथा सार्वजनीनता के कारण भक्ति-पंथ का विपुल प्रचार जगत में विद्यमान हैं इस जगत के मूल शक्ति 'ईश्वर' की विविध रूपों की नाना प्रकार की स्तुति की जाती है। वैदिक साहित्य का अनुशीलन यह बतलाता है कि कर्म तथा ज्ञान का उदय वैदिक युग में हुआ। उसी प्रकार वेद ही भक्ति का उद्गमस्थान हैं। यद्यपि संहिताओं में कर्मकाण्ड का प्राबल्य था परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उस समय ज्ञान तथा भक्ति का आविर्भाव ही नहीं हुआ था। कला तथा धर्म का सम्बन्ध ही कला की प्रवृत्तियाँ, रीति, परम्परा एवं वृद्धि का मूल कारण है। धर्म ने कला को सर्वप्रथम प्रभावित किया। भारतीय कला सर्वदा धर्म की सहचरी रही है। आर्य या हिन्दू धर्म ने सहिष्णुता तथा अन्य संस्कृतियों के विशिष्ट गुणों को आत्मसात करने में योग्यता दिखलाई है।

साहित्य पूर्नावलोकन

ओ०सी० गांगुली (इंडियन टैराकोटा आर्ट) सी०सी० दास गुप्ता (गैजेटिक वैली टैराकोटा आर्ट),एम०के धवलिकर (मास्टर पीसेज ऑफ इंडियन टैराकोटा आर्ट), एस० सी० काला (टैराकोटा फिगराइन्स फ्रॉम कौशाम्बी, टैराकोटाज इन दि इलाहाबाद म्यूजियम,टेराकोटाज ऑफ नार्थ इंडिया), राम गोविन्द चन्द्र (स्टडीज ऑफ इंडस वैलीटैराकोटाज), इत्यादिमृणमूर्ति कला पर रचित पुस्तकें है |

**विष्णु**

वैदिक देवताओं में प्रमुख विष्णु का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। पुराणों में गरूड़ के रूप में सुपर्ण नामक वैदिक देवता को विष्णु का अनुचर तथा समुद्रपुत्री लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी माना गया है।

**मृण्मूर्तियाँ** - कला में लक्ष्मी की अनेक प्रकार की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जिन्हें विभिन्न वर्गों में रखा जा सकता है-

1. **पद्मस्थिता** - इस वर्ग में कमल पुष्प् पर खड़ी, आभूषित लक्ष्मी मृण्मूर्तियाँ आती हैं।
2. **पद्मवासिनी** - लक्ष्मी कमल पुष्पों व लताओं से सज्जित सरोवरों में पूर्ण विकसित कमल पर खड़ी हुई प्रदर्शित हैं।
3. **सपक्ष लक्ष्मी** - वैशाली से एक विशेष प्रकार की लक्ष्मी मृण्मूर्ति प्राप्त हुई हैं जिसके दोनों कंधों पर लगे पंखों के कारण इसे सपक्ष लक्ष्मी की मृण्मूर्ति कहा गया है। आभूषणों से सज्जित, पद्मास्थिता यह लक्ष्मी मूर्ति शुंगकालीन है। डा0 मोती चन्द्र के अनुसार सम्भवतः आकाश की देवी बनाने की दृष्टि से ईरान के प्रभाव के कारण इनकी भी पीठ पर ईरानी पशुमूर्ति की भांति पंख लगे हैं। सम्भवतः लक्ष्मी को चंचला दर्शाने हेतु यह पंख लगाये गये हैं।

**मांगलिक चिह्न**

लक्ष्मी को कमल, श्रीफल, खेटक, अमृतघट, बिल्वफल, शंख आदि मांगलिक चिह्नों सहित दर्शाया गया है। लक्ष्मी के साथ प्रदर्शित सभी मांगलिक चिह्न किसी न किसी वस्तु के सूचक हैं। हाथी दिशाओं के सूचक दिग्गज हैं तथा घटों में भरा जल अमृत या सोम है। कमल पुष्प् से भरा सरोवर विश्व को जन्म देने वाले दिव्य जलों का स्रोत है। पद्म उस जीवन तत्व का सूचक है जो सृष्टि के आदिकारण रूप समुद्र के मन्थन से प्रकट होते हैं तथा जिसे भागवतों द्वारा भू पद्मकोश कहा गया है।

**गजलक्ष्मी**

लक्ष्मी का एक अन्य रूप गजलक्ष्मी है जिसमें उन्हें दो हाथियों द्वारा अभिषेक करते हुए दर्शाया गया है। कौशाम्बी से प्राप्त शुंगकालीन एक गजलक्ष्मी के दोनों ओर हाथी जल से परिपूर्ण कलश द्वारा अभिषेक

RRIJM 2015, All Rights Reserved

कर रहे हैं। कुषाणकालीन सुन्दर आभूषित गजलक्ष्मी को दो गजों द्वारा जल से अभिषेक करते हुए दर्शाया गया है।

**शिव**

शिव प्राचीन काल से ही लोकप्रिय देवता के रूप में पूजे जाते रहे हैं। मृण्मूर्तियों में भी शिवलिंग तथा शिव-पार्वती प्राप्त हुए हैं। अधीत क्षेत्रों से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ज्ञात हाता है कि यहाँ पर शिवलिंग अथवा शिव मृण्मूर्ति का प्रचलन कुषाणकाल से प्रारम्भ हो गया था। इसके विभिन्न प्रमाण उपलब्ध हैं जिन्हें निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

1. शिवलिंग
2. शिव मुख

शिवलिंग

**कुषाणकालीन ये शिवलिंग दो प्रकार के हैं-**

1. अर्धवृत्ताकार एक मुखलिंग
2. शंकुनुमा एक मुखलिंग

**अर्द्धवृत्ताकार एक मुखलिंग**

इस प्रकार के मुखलिंगों में सामने शिव का मुख है तथा पीछे लिंग स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। तृतीय नेत्र मस्तक पर गोलाकार रूप में प्रदर्शित है। सिर पर जटा बँधी है। एक अन्य उदाहरण में गले में ग्रैवेयक पहने हैं। इसी प्रकार एक अन्य शिव सिर में केश सिर के पीछे दृष्टव्य है।

**अर्धनारीश्वर**

इस रूप में शिव का आधा शरीर पुरुष का एवं आधा स्त्री का रहता है। राजघाट से प्राप्त गुप्तकालीन कुछ सिर के बाई ओर का अर्धभाग घुंघराले केशों से युक्त है तथा दाहिनी ओर के केश सादे हैं। इन्हें वासुदेवशरण अग्रवाल ने शिव का अर्धनारीश्वर रूप माना है अर्थात् आधा शिव का व शेष आधा अंश पार्वती का है।

**उमा-महेश्वर**

पाटलिपुत्र से प्राप्त शुंगकालीन मृण्फलक पर एक स्त्री और पुरुष खड़े हुए प्रदर्शित हैं। पुरुष के केश जटा के रूप में बंधे हैं तथा वक्ष पर कपड़ा पड़ा है। स्त्री का शरीर सुगठित है, इसे उमा-महेश्वर की आकृति माना जा सकता है। इस रूप में शिव पार्वती के साथ प्रदर्शित किये जाते हैं। दो भुजाओं में से एक देवी के स्कन्ध पर तथा दूसरी में उत्पल रहता है। देवी की कटि क्षीण, शरीर सुन्दर एक हाथ में दर्पण व दूसरा शिव के स्कन्ध पर रहता है। कभी इन्हें खड़े हुए तथा कभी बैठे हुए रूप में दर्शाया जाता है। पाटलिपुत्र से प्राप्त उपुर्यक्त मृण्फलक पर भी देवी का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर तथा शिव का बायां हाथ देवी का आलिंगन किये हैं। देवी का शरीर स्वस्थ, सुडौल तथा नग्न है। इस रूप में सत्ता तथा शक्ति का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है।

**वृषवाहन**

यह शिव का सुन्दर तथा भव्य रूप है। इसमें शिव अथवा शिव पार्वती दोनों वृषभ पर बैठे अथवा उसके निकट खड़े प्रदर्शित हैं। गुप्तकालीन शिव की पूर्णाकृति के निकट नन्दी वृषभ का सिर दृष्टिगत हो रहा है। शिव के बायें कान में कुण्डल है। शिव के केश कुण्डलीनुमा सज्जा में दिख रहे हैं। सम्भवतः इसमें पार्वती की आकृति टूट गई है। गुप्तकालीन मृण्फलक पर शिव तथा पार्वती के मध्य नन्दी वृषभ का सिर दर्शाया गया है, जिसे शिव दाहिने हाथ से सहला रहे हैं।

**शक्ति**

प्राचीन काल से ही नारी पुरुष की अर्धांगिनी मानी गई है। इसी ने आदिम काल में शक्ति का रूप धारण कर लिया था तथा इसी आदिशक्ति की लक्ष्मी तथा दुर्गा के रूप में पूजा होने लगी थी। सृष्टि की रचना हेतु स्त्री व पुरुष दोनों ही तत्वों का होना आवश्यक है। ऋग्वेद में शक्ति की सत्ता का उल्लेख है। वाजसनेयी संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक में अम्बिका, दुर्गा, उमा, काली आदि नामां का उल्लेख मिलता है। महाभारत में दुर्गा स्तुति तथा हरिवंश पुराण में देवी के महत्व का उल्लेख है। विष्णु को लक्ष्मी से तथा शिव को पार्वती एवं दुर्गा से सम्बन्धित किया गया है।

**पार्वती**

राजघाट से गुप्तकालीन पार्वती शिर प्राप्त हुए हैं। सिर पर जूड़ा तथा दोनों ओर केशों को दर्शाया गया है। देवी मोतियों की माला तथा विशाल अण्डाकार कर्णाभूषण पहने है तथा सिर पर ऊँचा जूड़ा तथा केशों के गुच्छे हैं। अहिच्छत्र से गुप्तकालीन पार्वती के शिर प्राप्त हुए हैं। इनके मस्तक पर खड़े तल में तृतीय नेत्र, कुण्डल पर स्वस्तिक चिह्न है तथा केश धम्मिल से बँधे हैं।

**गुप्तयुगीन महिषासुरमर्दिनी**

कौशाम्बी से प्राप्त मृण्फलक पर महिषासुरमर्दिनी देवी महिषासुर का नाश करती हुई प्रदर्शित है। देवी के दोनों पैरों के मध्य महिष का सिर दृष्टिगत हो रहा है। देवी के चार हाथ स्पष्ट दृष्टव्य हैं।

राजघाट से प्राप्त एक चतुर्भुजी दुर्गा देवी अपना परशु महिषासुर के शरीर में प्रवेश करा रही है तथा देवी कण्ठा तथा लघुलहंगा पहने हुए हैं।

**परवर्ती गुप्तयुगीन महिषामर्दिनी**

राजघाट से प्राप्त स्त्री की खड़ी चतुर्भुजी महिषासुरमर्दिनी मृण्मूर्ति लटकते कर्णाभूषण, हार, कण्ठा पहने हैं। अर्धवृत्ताकार रूप में सजे देवी के केश बिन्दुओं से अलंकृत डोरी से बंधे हैं देवी के ऊपरी दाहिने हाथ में सम्भवतः तलवार तथा बायें हाथ में परशु है। नीचे के दोनों हाथ महिष के गले तथा शरीर के पिछले भाग पर रखे हैं। मृण्मूर्ति का निचला भाग टूटा हुआ है। एक अन्य खड़ी चतुर्भुजी महिषासुरमर्दिनी मृण्मूर्ति कण्ठा, भुजबन्ध पहने हैं तथा इनके मस्तक पर ऊर्णा चिह्न बना है। ऊपर के दोनों हाथ सिर के पास जुड़े हैं तथा निचला दाहिना हाथ सामने खड़े महिष के पिछले भाग पर तथा बायां हाथ महिष की गर्दन पर रखा है।

**दुर्गा**

श्रावस्ती से प्राप्त गुप्तकालीन दुर्गा की मृण्मूर्ति को कला में सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है। अत्यन्त सुन्दरता से बने इस वृत्ताकार मृण्फलक को चारों ओर से कमल की पंखुड़ियों से अलंकृत किया गया है। मृण्फलक के मध्य में सिंह की पीठ पर बैठी दुर्गा अपने बायें हाथ में त्रिशूल पकड़े हैं। कण्ठे, कर्णाभूषण, कंगन, पायल तथा करधनी से सज्जित देवी साड़ी पहने है। दाहिनी ओर सिंह का सिर दृष्टिगत

हो रहा है। देवी के मस्तक पर तृतीय नेत्र है। मुख के दोनों ओर केशों को लटकते हुए दर्शाया है।

**चामुण्डा**

कुम्रहार तथा अहिच्छत्र से कतिपय चामुण्डा देवी की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अहिच्छत्र से चामुण्डा का कमर के नीचे का भाग प्राप्त हुआ है। इस आकृति की प्रमुख विशेषता इस पर लिपटी हुई बिच्छू तथा छिपकली की आकृतियाँ हैं, जो देवी की भयानकता को और बढ़ाती हैं। एक अन्य चामुण्डा आकृति को आसन पर बैठे हुए दर्शाया गया है। आकृति के पैरों के निकट दो शव पड़े हैं। देवी की बाईं ओर एक बालक की नग्न आकृति हैं मूर्ति विज्ञान की विशेषताओं के आधार पर इस देवी को चामुण्डा की संज्ञा दी गई है। कुम्रहार से एक अन्य स्त्री आकृति प्राप्त हुई है जिसके कमर से नीचे का भाग टूटा हुआ है। इसके नेत्र तथा मुखमुद्रा भयानक हैं। इसका दाहिना हाथ ऊपर उठा है तथा बायां हाथ नीचे लटक रहा है। यद्यपि इस देवी की आकृति में मूर्ति विज्ञान की सभी विशेषतायें दृष्टिगत नहीं होती हैं फिर भी मुखमुद्रा व नेत्र की भयंकरता के कारण इसे चामुण्डा कहा जा सकता है।

**कार्तिकेय**

राजघाट तथा कौशाम्बी से कार्तिकेय की कतिपय मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन मृण्मूर्तियों को उनके वाहन मयूर के आधार पर दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) मयूर सहित कार्तिकेय

(2) मयूर रहित कार्तिकेय

कहीं पर कार्तिकेय को वाहन मयूर पर बैठे हुए दर्शाया गया है। कहीं पर वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त कार्तिकेय के हाथ में मोर के गले में पड़ी रस्सती है।

**मयूर रहित कार्तिकेय**

गुप्तकालीन कतिपय कार्तिकेय मृण्मूर्तियों के बायें हाथ में शक्ति (आयुध) है। इनमें वाहन मयूर का अभाव है। एक खड़ी पुरुष आकृति को कार्तिकेय की आकृति माना गया है। जिसके बायें हाथ में शक्ति है तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। इनके कान तथा गले में आभूषण, सिर पर जूड़ा तथा पैरों पर धोती दिखाई दे रही है। मृण्फलक के एक ओर स्त्री खड़ी है। यह मृण्मूर्ति मथुरा से प्राप्त कार्तिकेय प्रतिमा से साम्य रखती है, हाथ में शक्ति होने के कारण इन्हें शक्तिधर की संज्ञा दी गई है। शारीरिक सौष्ठव में बोधिसत्व की मूर्ति से साम्य रखने पर भी हाथ में शक्ति तथा पादपीठ पर लिखे लेख में कार्तिकेय का नामोल्लेख होने के कारण इसे कार्तिकेय कहा गया है।

**गणेश**

वैशाली, राजघाट अहिच्छत्र, कौशाम्बी तथ कुम्रहार (पटना) से गणेश की मृण्मूर्तियाँ तथा शिर प्राप्त हुए हैं। वैशाली से गणेश का शिर प्राप्त हुआ है। गणेश की कतिपय बैठी हुई मृण्मूर्तियों के बायें हाथ में मोदकों से भरा पात्र है परन्तु इनके दाहिने हाथों में विभिन्नता है। एक के दाहिने हाथ में संभवतः परशु तथा दूसरे में मूलक है। कहीं पर दोनों हाथ यद्यपि स्पष्ट नहीं है परन्तु इसके बायें हाथ में संभवतः मोदकों से भरा पात्र है क्योंकि गणेश की सूड़ बाईं ओर मुड़ी है। एक अन्य मृण्मूर्ति में गणेश को बैठे हुए दर्शाया गया है। इस मृण्मूर्ति में मात्र एक ही हाथ दृष्टिगत है, जिसमें मोदकपात्र के स्थान पर परशु है। सिरविहीन एक अन्य आकृति गणेश की आकृति की ओर तेजी से बढ़ती हुई दर्शायी गई है। संभवतः आकृति का उद्देश्य मोदक पात्र को ग्रहण करना है।

**सूर्य**

प्राचीन प्राचीन काल से ही भारत में सूर्य पूजा प्रचलित थी। कौशाम्बी तथा पटना से प्राप्त शुंगकालीन मृण्फलक पर सूर्य के चार घोड़ों द्वारा खींचे गए रथ पर बैठा दर्शाया गया है। सूर्य के शरीर के आवक्ष भाग पर कवचनुमा कोट है। नीचे का शरीर दृष्टिगत नहीं हो रहा है। सूर्य के हाथों में धनुष बाण है। रथ को सारथी अरुण चला रहा है, उसने अपने हाथों में घोड़ों की रास पकड़ रखी है। (चित्रफलक 22, पटना) अहिच्छत्र से अनेकों सूर्य मृण्मूर्ति के अवशेष प्राप्त हुए है। प्रतिमा लक्षण के आधार पर इन मृण्फलकों के अवशेषों को वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 450 से 750 ईस्वी के मध्य रखा जा सकता है। एक वृत्ताकार फलक पर सिरविहीन सूर्य की आवक्ष आकृति प्राप्त हुई है, जिनके बायें हाथ में कमल पुष्प् है। सूर्य आस्तीनदार उदीच्य वेश पहने हैं। विशेष प्रकार के कपड़े से निर्मित टयूनिकनुमा वस्त्र मोतियों की लड़ियो से सज्जित है। प्रत्येक लड़ में चार मोती है कमर में मेखला है। कतिपय मृण्फलक अवशेषों पर तीन अश्व दृष्टिगत हो रहे हैं जिनके गले में रास दिखाई दे रही है।

**कुबेर**

लघु देवताओं में कुबेर का प्रमुख स्थान है। अधीत स्थलों से अत्यन्त अल्प मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कौशाम्बी से घोषिताराम विहार से लक्ष्मी तथा हारीति के साथ कुबेर की टूटी हुई आकृति प्राप्त हुई है, जो अब इलाहाबाद विश्वविद्यालय संग्रहालय में संग्रहीत है। अहिच्छत्र से कुबेर का सिर के नीचे का भाग प्राप्त हुआ है जिसका पेट घड़ेनुमा है तथा वह गले में सपाट कण्ठा तथा कमर में मेखला पहने है। पैरों पर स्कार्फनुमा वस्त्र पड़ा है। दाहिना हाथ अभयमुद्रा में तथा बाएं हाथ में निधिपात्र है। वैशाली के सिररहित कुबेर की गुप्तकालीन मृण्मूर्ति लम्बोदर तथा बैठी हुई मुद्रा में प्रदर्शित है। इनके गले में कण्ठा है तथा हाथ में संभवतः रत्नपात्र है।

**मातृदेवी मृण्मूर्तियाँ**

भारत में मातृदेवी के पूजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन कला से चली आ रही है। एक ओर तो ये मातृदेवियाँ जीवनदात्री तथा समस्त सुख प्रदान करने वाली हैं तो दूसरी ओर प्रकृति के विनाशकारी तत्वों से भी सम्बन्धित की जाती हैं। प्रकृति के विनाशकारी तत्वों से सम्बन्धित होने के कारण ही ये भयानक मुखमुद्रा में दर्शायी गई हैं। प्रकृति तथा स्त्री की प्रजनन शक्ति ने तत्कालीन मानव समाज में आश्चर्य मिश्रित भय की भावना को जागृत किया होगा, जो कालान्तर में पूजा और अर्चना में परिवर्तित हो गई। मातृदेवी पूजा का कारण संभवतः सुरक्षा, उन्नति तथा

सुखी जीवन की कामना रही होगी। कालान्तर में यही मातृदेवी अनेक रूपों में यथा लक्ष्मी तथा दुर्गा के नाम से पूजी जाने लगीं।

निष्कर्ष एवं सुझाव–

मृण्मूर्ति कला के माध्यम से तत्कालीन समाज की धार्मिक परम्पराओं, विश्वास, एवं सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्म अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। सांसरिक जीवन की एकरसता को दूर करने के लिए प्राचीन मानव ने मनोविनोद के विविध साधनों को अपनाया था। मृत्तिका कला में प्राप्त क्रीड़ा तथा मनोरंजन के साधनों की पुष्टि तत्कालीन साहित्यिक साक्ष्यों से होती है। उत्सव, त्यौहार तथा महत्वपूर्ण सामाजिक अवसरों पर नृत्य, संगीत (गायन-वादन) के द्वारा मानव प्रसन्नता प्रकट करता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


- अग्रवाल, वी0एस0- 1, "भारतीय कला", वाराणसी- 1996
  2. 'द टेराकोटा आफ अहिच्छत्र, ए0 आई0, नं0 4, 1847-48
  3. 'मथुरा टेराकोटा', जे0यू0पी0एच0एस0, जिल्द, 1936
- अग्रवाल, धर्मपाल एवं पन्नालाल- 'भारतीय पुरातिहासिक पुरातत्व', लखनऊ, 1982
- अग्रवाल, डी0पी0 एवं शीला कुसुमागर- 'प्रीहिस्टारिक क्रोनोलाजी एण्ड रेडियो कार्बन डेटिंग इन इण्डिया, नई दिल्ली, 1979
- अल्टेकर, ए0एस0 एण्ड बी0 मिश्रा- 'रिपोर्ट आन कुमारहार एक्सकावेशन, 1551-55', जायसवाल हिस्टोरिकल रिसर्च सीरिज, पटना, 1959
- अलचीन, एफ0आर0- 'पिरवलीहाल' एक्सकावेशन', हैदराबाद, 1960
- अंसारी, जेड0डी0 एवं एम0एसम0 नागराज- 'एक्सकावेशन एट सनंगनकल्लू', पूना, 1956
- बनर्जी, जितेन्द्र नाथ- 'द डवलपमेन्ट आफ हिन्दू आकनोग्राफी', कलकत्ता, 1956
- बनर्जी राधा- 'हड़प्पन टेराकोटा आर्ट', नई दिल्ली, 1995
- बनर्जी, अरूंधती- 'अर्ली इण्डियन टेराकोटा आर्ट', रिसर्च इन इण्डियन आर्कियोलाजी, आर्ट, आर्किटेक्चर, कल्चर एण्ड रिलीजन, 1995
- भट्टाचार्य, वी0सी0- 'जैन आइकनोग्राफी', लाहौर, 1939
- भट्ट, एस0के0- 'आर्कियोलाजिकल एक्सप्लोरेशन इन बस्ती डिसट्रिक्ट (यू0पी0), पुरातत्व, नं0 3, 1964-70
- भोलानाथ एवं विश्वास एम0के0- 'एनीमल रिमेन्स फ्राम चिराँद', सारन डिसट्रिक्ट, बिहार, 1980
- चतुर्वेदी, ए0एन0- 'एडवान्स आफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर टू द हिमालयन तराई: एक्सकावेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन इन द सरयूपार रिजन आफ उत्तर-प्रदेश, मैन एण्ड इन्वायरमेन्टस, जिल्द 9, 1985


RRIJM 2015, All Rights Reserved 